शायद संवाद

चंद्रकांता

शायद संवाद

नीलकंठ सोने की कोशिश में कई करवटें बदल चुकने के बाद, अब आँखें मूँदे शवासन में लेटे हैं। बेहरकत! इसी शिथिल अवस्था में नीलकंठ नींद के आगोश में चले जाते हैं।

एक अभेद्य चादर उन्हें आपादमस्तक लपेट लेती है, जहाँ बस वे होते हैं और उनकी जादुई पिटारी; रंग-बिरंगे, उलझे-सुलझे धागों से अटी पड़ी कि खुल गई हो, गिलि-गिलि छू... कर, कई-कई चेहरों, तसवीरों और दृश्यों के करतब दिखाने लगेगी।

इधर पिटारी खुलने से रने लगे हैं नीलकंठ! दृश्यों के आघात सह नहीं पाते। बदहवास हो उठते हैंस, पत्थरों की बरसात में निहत्थे और निपट अकेले! एक के बाद दूसरा पत्थर! कैसे रोकें इन्हें! पत्थर न प्यार की भाषा समझते हैं, न डाँट-फटकार! तो क्या शुतुरमुर्ग की तरह गर्दन पंखों में घुसा 'सब सही सलामत' वाले भ्रम में निश्चिंत हो जाएँ।

लो! दिमाग में बात आई नहीं कि दो किशोर सिर आँगन की दीवार के ऊपर उझक आए, छोटे हाथों में बड़े पत्थर लिए।

"भागो पंडित, मिलिटेंट आ रहे हैं, भाग जाओ!"

गुनगुनी धूप में ऊँघता नीलकंठ रबर के बबुए-सा खड़ा हो जाता है। लगभग दौड़ता हुआ घर के अंदर बंद हो जाता है। कुंडी लगाते हाथ काँपने लगते हैं। बाहर से दबी-दबी हँसी की आवाजें आती हैं।

नीलकंठ कमरे के बीचोबीच, उजबक-सा खड़ा रह जाता है।

"हया बदमाशों! बड़े-बूढ़ों का लिहाज करना भूल गए? शैतान कहीं के। जाओ, घर चले जाओ।" रहमतउल्ला की डाँट लड़कों को छितरा देती है। तो! नीलकंठ अब मजाक का विषय बन गया है।

दृश्य बदलता है! रघुनाथ हाँफता हुआ घर में दाखिल होता है।

"अतीक-निसार ने गली में पकड़ लिया। अब मैं यहाँ नहीं रह सकता।"

"क्यों?" नीलकंठ हैरान है। यह सब क्या हो रहा है? रघू काँप क्यों रहा है?

"अल्टीमेटम दिया है। दो दिन घर खाली करो। तुम्हारे भाई-बंधु तो कब के चले गए। तुम यहाँ किसलिए पड़े हो?"

विशंभर बड़े भाई को हाथ पकड़कर बिठाता है।

"कौन कंबख्त कह रहा है हमें घर छोड़कर जाने को? हमारा घर है, कोई किराएदार हैं क्या? आप भी भाईलाल, मेंढकी की टर्र-टर्र को शेर की दहाड़ समझते हैं। हम चले जाएँ? अरे! वी हैव ए हिस्ट्री ऑफ फाइव थाउजेंड ईयर्स (पाँच हजार वर्षों का इतिहास है हमारा)। किसी सिरफिरे ने कह दिया, 'जाओ', और हम दुम दबाकर भाग जाएँ...?"

विशंभर की रगों का जवान खून अल्टीमेटम के आगे खौलने लगता है।

"विशू! तुम नहीं समझते। ये सिरफिरे निजामे मुस्तफा के नाम पर कुछ भी कर सकते हैं। कौल का क्या हुआ? महाराज रैना तो रुक्का मिलने के बाद भी घर में रहा तो दिन दहाड़े चार जने घर में घुस आए। पूरे खानदान को भून डाला! ना भई ना, मैं कोई रिस्क नहीं लेना चाहता।"

"आप नाहक डर रहे हैं भाईलाल! हनीफ मेरा दोस्त है। उससे बात करूँगा। उसके साथी निपट लेंगे अतीक-निसार से!"

"विशू प्लीज! किसी से इस बारे में बात न करना। इन लोगों की कई तनजीमें हैं। एक से छूटेंगे तो दूसरा दबोच लेगा।"

"अच्छा-अच्छा! किसी से कुछ न कहूँगा, आप शांत हो जाओ।"

विशू ने बड़े भाई को दिलासा दिया और शाम ढलते ही घर से निकल पड़ा - "काकनी, पाँच मिनट में लौटूँगा। खाना तैयार रखना।"

"कहाँ जा रहे हो इस वक्त?" रघुनाथ ने टोका।

"बस, पास में ही जा रहा हूँ। अभी आया, फिक्र न करो।" विशू रुका नहीं।

रूपवती थाली लिए बैठी रही। नीलकंठ-रघुनाथ इंतजार करते रहे। विशू नहीं लौटा।

"कहाँ गया लड़का?" माँ खिड़की-दरवाजे खोल गली निहारती रही। रघुनाथ दोस्तों-नातेदारों को फोन करता रहा। रात सीने पर अजगर बनकर बैठी रही। माँ का खून सूख गया "अँधेरी नगरी हो गया है अपना गाँव। कब क्या हो, कोई भरोसा है क्या?"

विशू नहीं लौटा! रघु उजास फूटते ही घर से निकल पड़ा था। कहाँ रह गया लड़का?

दूर नहीं जाना पड़ा। विशंभर गली के मोड़ पर ऐंठा पड़ा था। खून से लथपथ! धरती में मुँह गड़ाए! नीलकंठ का बहादुर बेटा एक गोली से हार गया। पाँच हजार साल के इतिहास से उसका नाम कट गया।

"अब भी नहीं जाओगे?" अतीक की भूरी पुतलियों में बारूद भरा था।

"अब अंत समय दगा दे जाऊँगा अपने पुरुखों को? मेरा जन्म यहीं, मरण यहीं, देवता यहीं, मसान यहीं! तुम लोग जाओ।" नीलकंठ बिदाख दे रहा है।

रूपवती न हँसती है न रोती है। एकटक दरवाजा टोहती रहती है - "आता होगा विशू। उसे भात गरम करके कौन देगा? तुम लोग तो उसे सूखे अकड़े कराड़े खिलाओगे। आलसी जो हो!" काँगड़ी फूँक-फूँक उसके कोपल दहक रहे हैं, "ठंड में आया है लड़का। लौटकर पूछेगा, मेरी काँगड़ी काकनी?"

रघुनाथ का ब्लड प्रेशर बढ़ गया है - "प्लीज बबा! जिद मत करो। अंजू, मंजू की सोचो, किस-किससे बचाऊँगा इन्हें? अब जो भी साबुत हैं उसे तो समेटने दो।"

"तुम जाओ रघू, माँ को भी ले जाओ। मेरा क्या! कल मरा न आज!" रघुनाथ पिता के पैर पकड़ सुबक रहा है - "बबा! माँ की हालत देखो। इस मुसीबत में हमें एक-दूसरे की जरूरत है।"

मोहिनी बहू-बेटियों को बाँहों में बाँधे चुपचाप धरती ताक रही है। नीलकंठ सहमी बेटियों को देख काँप उठता है - "शिवशंभो। जैसी तेरी इच्छा!"

बाहर रात है। कुहासा झरती रात। नसों में जहर घोलती रात! रोशनी की फाँक भी कहीं नहीं। सिर कंधों पर बुगचे-बैब उठाए रघुनाथ-नीलकंठ पहचाने रास्ते टटोल-टटोलकर गली-कूच लाँघ रहे हैं। खाली घरों की कतार के बाद, रहमतउल्ला की खिड़की से रोशनी की शहतीर नजर आती है। रहमतउल्ला भरे गले से आवाज दे रहा है। तसल्ली या कि बुरे वक्त का स्यापा? नीलकंठ समझने की स्थिति में नहीं है। कुछ शब्द मुड़कर देखने को मजबूर हो रहे हैं। 'जल्दी लौट आओगे अल्लाताला सबका निगहेबान! इधर की फिक्र मत करना!' मैं हूँ न?' नीलकंठ रोशनी की शहतीर की तरफ हाथ जोड़ता है। रहमतउल्ला क्या अँधेरे को बेधकर देख पाएगा। नीलकंठ के भीतर घुमड़ता हाहाकार? नीलकंठ ने शिवमंदिर की दिशा में भी हाथ जोड़ दिए। मंदिर में अँधेरा था। भगवान गाढ़ी नींद सो रहे थे। नीलकंठ के बहते आँसू कैसे देख पाते।

नीलकंठ, मर्द मौतबर! कैसे औरतों की तरह सुबक रहा है। वो यों बदहवास-बेहाल हो जाएगा, तो बाल-बच्चों को कौन दिलासा देगा?

नीलकंठ बच्चों को आवाज देते हैं - "रघुनाथ! मोहिनी! अंजू बेटी!" कहीं कोई नहीं। नीलकंठ की आवाज खाली दीवारों से टकराकर लौट आती है। आई! नीलकंठ आँखें खोल चौतरफ देखने लगते हैं। अरे! वे कहाँ हैं? अलिफ अकेले! वे शायद नींद में जम्मू पहुँच गए थे! गला सूख रहा है। "अरे, भई कोई है?" ठस्स अँधेरी रात! दिन तो गुजर जाता है, धीरज दो बातें कर जाता है। पर रात नहीं बीतती, निपट अकेले। रात गहराते ही कब्र में उतरने लगता है। नीलकंठ। कोठरी में मेह झर रहा है। भारी मिलिट्री कंबल के नीचे भी नीलकंठ की कँपकँपी छूटती रहती है।

बारह साल! बारह साल बाद नीलकंठ घर लौटा है। लेकिन यहाँ घर की जगह मलबे का ढेर पाया। ईंट-कोयला, टिन के पत्तर तक गायब। कहाँ गया घर? सुना तो था पीछे से लोगों के घर जला दिए गए हैं पर नीलकंठ को रहमतउल्ला पर भरोसा था। उसने जाते वक्त कहा था...! नीलकंठ पागलों की तरह मलबे के चक्कर काटता रहा था। उधर शहतूत का पेड़ हुआ करता था। अधजला ठूँठ-भर पड़ा है। नीलकंठ ने शहतूत की जड़ों पर हाथ फेरा। वही है, वही है। कैसे नहीं पहचानेगा वह? साथ नहीं छोड़ा उसने घर का! जीना-मरना साथ! नीलकंठ के भीतर हूक-सी उठी। रूपा यों ही घर के साथ शहतूत के वृक्ष को याद नहीं करती थी।

संग साथ संवाद! ढेर सारे पाँखी शहतूत के पेड़ पर बैठ कच्चे-पक्के फल कुतरते, लड़ते-झगड़ते और मीठी बोलियाँ सुनाते! ढेर सारे पाँखी शहतूत के पेड़ पर बैठ कच्चे-पक्के फल कुतरते, लड़ते-झगड़ते और मीठी बोलियाँ सुनाते! रूपा तो पाँखियों से खूब बतियाती थी।

वुड़र पाल लाल से पीले हुए चिनार के पत्ते कालीन बिछा गए हैं। पाँव पड़े तो चीखते हैं, चरमर-चर्रमर्र! विषाद राग! नीलकंठ आस-पास कोई पोशनूल ढूँढ़ रहा है, कोई सतुत, सुग्गा गुगी! ऐन दीठ के आगे, ठूँठ हुई शाखें आँखों में नेजे चुभोती हैं।

साठ से बहत्तर साल का हो गया नीलकंठ, जम्मू के कैंपों में। घर के लिए भी पराया हो गया। कुछ भी तो पहले जैसा नहीं लगता। दोस्त भी बेगाने हो गए। रहमतउल्ला? उसने कहा था - "फिक्र न करना, मैं हूँ न!" नीलकंठ ने सोचा, मिल ले, पर पाँव नहीं उठे। रघू ने कहा था - "अतीक निसार जब मुझे धमका रहे थे, रहमत का लड़का भी उनके साथ था।" क्या पता इस बीच वह भी बदल गया हो।

घर के मलबे पर बैठा नीलकंठ स्यापा करता रहा। कहाँ जाए? जम्मू से तो कहकर चला - "यार दोस्त हैं वहाँ, क्या अकेले बंदे को गज-भर जगह नहीं देंगे?" इधर पहुँचते ही राख हुई घरों की कतार में श्मशान से साक्षात्कार हुआ। अरे, मवालियों, घरवाले तो घर छोड़कर चले गए थे इन ईंट-लकड़ी के खाँचों से कौन-सा खतरा था तुम्हें? एक तीली दिखाई होगी और दर्जन-भर घर स्वाहा हो गए। उम्रों के घरौंदों का हशर! नीलकंठ की हिम्मत जवाब देने लगी। बस स्टॉप से पैदल चलकर आया था, थकान भी थी। शायद ऊँघ आ गई हो। बी.एस.एफ. के जवानों ने उसे ढुला-ढुलाकर जगाया तो वह हयबुंग-सा उन्हें देखता रहा।

"कौन हो? कहाँ से आए हो, यहाँ क्या कर रहे हो?" उन्होंने कई तुर्श सवाल किए जो नीलकंठ को छीलते हुए निकल गए।

"मैं, नीलकंठ भट्ट! बार साल बाद घर लौटा था। सोचा, इधर नई सरकार बनी है। हालात अब ठीक हो जाएँगे, मगर इधर मेरा घर... जलाकर राख कर दिया है।" बोलते-बोलते नीलकंठ का गला अवरुद्ध हो गया।

जवानों ने उसे एक्स-रे नजर से देखा, कंबल फिरन टटोला। बुगजे में तौलिया, शेव सामान, साबुन, कुछ सूखा राशन और अगड़म-बगड़म चीजें थी। वे उसे मेजर साहब के पास ले गए। मेजर साहब दयावान थे, बातचीत की और मंदिर में लगी कोठरी में उनके रहने का प्रबंध करवा दिया। एक उत्साही जवान उसे देखकर जाने क्यों बेहद खुश हुआ।

"बाबा! तुम इधर रहकर भगवान की पूजा-अर्चना करो। पुण्य कमाओ। हम तो बस माथा नवाना जानते हैं। तुम तो पंडित हो न!"

मेजर साहब ने आश्वस्त किया - "कोई फिक्र न कीजिएगा। जिस चीज-वस्तु की जरूरत हो इस धीरज से कहिए, लाकर देगा।"

मुश्किल से बाईसेक वर्ष का लगता जवान धीरज, एक मोटा मिलिट्री कंबल और राशन लेकर नीलकंठ के साथ हो लिया। कोठरी में सामान जमाकर बतियाने लगा - "मेरा नाम तो बाबा, आप जान ही गए, धीरज पर मेरे दद्दा मुझे 'धीरू' कहते हैं। मैं आपको दद्दा कहूँ बाबा? मेरे दद्दा बिल्कुल आप जैसे ही दिखते हैं...।"

नीलकंठ ने अनुभवी नजर से लड़के को परखा, दूर पार के मैदानों से आया है। घरवालों की याद आती होगी। उसे लड़के पर प्यार आया - "हाँ, हाँ क्यों नहीं। दद्दा तो हूँ ही मैं।

दरअसल धीरज बेटा! सभी बूढ़े एक जैसे दिखते हैं, खिचड़ी दाढ़ी झुकी कमर, मुँह से दाँत गायब और सहारे के लिए मुहताज...!"

धीरज ने टोका - "बस, बस दद्दा, इतने से ही कोई किसी का दद्दा थोड़े बनता है?"

नीलकंठ को अच्छा लगा - "जीते रहो बेटा! सौ साल जियो।"

"यह ठीक है दद्दा! इधर उम्र का आशीर्वाद बहुत जरूरी है।" धीरज हँसता है। नीलकंठ मुग्ध होकर देखता है। इस पराई हुई अपनी धरती पर, यह उसका कुछ न लगता लड़का, कितना अपना लगने लगा है! लेकिन!

लेकिन क्या? तुम उम्र का आशीर्वाद दे सकते हो, उम्र की गारंटी नहीं। मंदिर की रखवाली के लिए तैनात धीरज और उसके साथी भी सीमेंट की बोरियों की आड़ में खंभों की तरह, धूप बारिश में खड़े, गोलियों के साए में जी रहे हैं। तुम्हारा विशु तो एक ही गोली से हार गया। यह कितनी गोलियाँ सह पाएगा?

दिन तो गुजर जाता है, छुटपुट संवादों में, रात नहीं कटती। खूँखार दुश्मन की तरह पंजों में दबोचे रखती है। आज तो पलकें मुँदने का नाम ही नहीं लेतीं।

रात के सन्नाटे को चीरती हुई गोलियों की आवाज, नीलकंठ को चौकन्ना कर देती है, कौन मरा? किसने गोली चलाई?

यों पिछले महीने-भर से यहाँ रहते, गोलियों की सदाएँ पहचानी-पहचानी लगने लगी हैं। बी.एस.एफ. का सेंटर भी पास ही है। हो सकता है प्रेक्टिस कर रहे हों। धीरज कहता है - "रोज का ही सिलसिला है यह दद्दा! आज मुठभेड़ में आठ मरे, जिसमें चार जवान थे, दो पाकिस्तानी घुसपैठिए और दो नागरिक!"

आदमी अब गिनती हो गया है। उसका नाम, उसकी वल्दियत, उसका परिवार किसका बेटा, किसका पति? यब सब अब कोई नहीं पूछता। मारने वाले पर अब कोई नहीं रोता। रोज की बात जो हो गई है। मौत का भी आदी हो गया है आदमी। जवानों की माएँ तो दूर हैं। बेटों को मृत्यु का तिलक लगाकर वादी में भेज देती हैं।

"क्या हो गया है मेरी ऋषि वाटिका को?" नीलकंठ अकेले बैठे ललद्यद को याद करता है। 'शेव छय थलि-थलि रोजान...।' कहा था उस संत योगिनी ने। शिव सर्वत्र व्याप्त है, हिंदू-मुसलमान में भेद मत करो। नूरुद्दीन वली ने भी दुहराया था, 'एक ही पिता के

संतान हैं हम सब, सो भेद-भाव कैसा?' लेकिन अब? एक जेहादी है दूसरा काफिर! लोग ललद्यद, नूरूद्दीन वली को ही नहीं, महजूर और नादिम को भी भूल गए हैं।

नीलकंठ ठंडी कोठरी के अँधेरे कोनों-अँतरों को देखकर घबरा जाता है। भय! विचित्र सा भय! काश! कोई पास होता, किसी से दो बात कर पाता! कनटोप से सिर-कान ढक, नीलकंठ फिरन के ऊपर भारी मिलिट्री कंबल ओढ़ लेता है। कोठरी का दरवाजा उढ़का, पास ही गाय-बाड़े की ओर चल देता है। चौतरफ चोर नजर डाल निश्चिंत-सा हो बाड़े में घुस जाता है। बाहर अपशकुनी अँधेरा है, हवा की साँस भी थम गई है।

गौशाला में घास के पूलों और गाय-बैलों की देह गंध से मिली-जुली गरमास है। जीवित प्राणियों का अहसास नीलकंठ को अच्छा लगता है। गायें इस अप्रत्याशित आगमन को सूँघ, मुँह उठा नीलकंठ को पहचानने की कोशिश करने लगी। डॉ... बाँ...! नीलकंठ ने जवाब में गायों की पीठों पर स्नेह से हाथ फेरा - "हाँ... मैं हूँ मैं हूँ।" नन्हें बछड़े के पास सरककर देर तक उसे सहलाते रहे। अच्छा लगा। पता नहीं चला कब वे घास के पूलों पर मिलिट्री कंबल बिछा सो गए।

"दद्दा! दद्दा!" लगा, नींद में किसी ने पुकारा है। आँखें खोलीं तो सामने धीरज को खड़ा पाया - "अरे दद्दा, आप इधर? आपको कहाँ-कहाँ न ढूँढ़ा।" धीरज की आश्चर्यचकित मुद्रा ने नीलकंठ को शर्मिंदा सा कर दिया। क्या कहे? कैसे और क्यों इस गाय-बाड़े में चला आया? ठंड के कारण, डर के कारण या अकेलेपन से घबराकर?

कोठरी के दालान में सुनहरी धूप पसर गई है। पहाड़ों ने बर्फ के ताज पहन लिए है और मौसम में गुलाबी जाड़ा प्रवेश कर चुका है। नीलकंठ चाय में ब्रेड डुबो-डुबोकर खा रहा है, जैसे जन्मों का भूखा हो। धीरज जाने कहाँ-कहाँ की दास्तानें सुना रहा है।

"इधर दीना नानबाई रहता था, उस तरफ! दिख नहीं रहा।" नीलकंठ अचानक पूछ बैठते हैं।

"दद्दा, मैं दो साल से यहीं मंदिर की रखवाली में हूँ। कभी किसी नानबाई की दुकान नहीं देखी इधर।" धीरज जले हुए घरों की कतार को नजर-भर देख चाय के बर्तन समेटने लगता है।

"अच्छा! रहमतउल्ला को जानते हो? नुक्कड़वाले मकान में रहता था, रहमतउल्ला बंगरू।"

"वो...! जिसके लड़के ने बी.एस.एफ. के आगे आत्मसमर्पण किया है? मसूद का पिता?"

नीलकंठ कुछ चौंक गया - "हाँ, हाँ वही, पर आत्मसमर्पण कब किया?"

"दो साल पहले दद्दा! वह तो हीरो बन गया। बी.एस.एफ. ज्वाइन भी किया। पर रहमतउल्ला को मिलिटेंट रोज धमकियाँ देते हैं कि लड़के को उसी ने पट्टी पढ़ा कर जेहाद के खिलाफ कर दिया। उनकी नजरों में मसूद और उसके पिता दोनों काफिर हो गए हैं।"

"कहाँ है अब रहमतउल्ला?" नीलकंठ की आवाज में चिंता थी।

"घर ही है दद्दा! बाहर आना-जाना बहुत कम कर दिया है।"

नीलकंठ हैरान है। रहमतउल्ला के दोनों लड़के उसके सामने ही बड़े हुए हैं। मसूद और शौकत। मसूद बचपन से ही थोड़ा खुराफाती था। पर शौकत तो बेहद सीधा लड़का लगता था।

"तुम उसे बुला सकते हो?" नीलकंठ से विनती-सी की।

"क्यों नहीं दद्दा। हमें तो उनकी भी खैर-खबर रखनी पड़ती है। घर में वह अकेला ही है, लड़का अनंतनाग में ड्यूटी पर है। पत्नी तो हमारे रिकवरी सेंटर में रहती है। वहीं उसका इलाज चल रहा है।"

"फातिमा? क्या हुआ उसे?"

"वो तो समझो पूरी पागल है दद्दा! सबसे छोटा लड़का मारा गया, तभी से गुमसुम पड़ी रहती है। न खाने का होश, न पहनने-ओढ़ने का।"

धीरज को जितना मालूम था, सुना दिया। आगे खुद रहमतउल्ला ने अपनी दास्तान नीलकंठ को बयान की - "दोनों लड़कों को पाकिस्तानी घुसपैठिए जेहाद के नाम पर फुसला-बहका कर ले गए। हमारी किसी ने न सुनी भाया। कुरान पाक की कसम! हमारी जरा भी मंशा न थी कि लड़के सरहद पर, मारकाट की ट्रेनिंग के लिए चले जाएँ। बड़े की तो मानता हूँ अक्ल मारी गई थी पर छोटा तो रो-रोकर फरियाद करता रहा, मुझे छोड़ दो। लेकिन वे नहीं माने, ले गए जैसे जिबह के लिए बकरा ले जाते हैं।"

रहमतउल्ला की मटमैली आँखों में आँसुओं की बाढ़ उमड़ आई। वह कंबल में मुँह घुसा सुबकने लगा - "छः महीने बाद उसे घर के दरवाजे पर पटककर चले गए। बच्चा पहचान में ही नहीं आया। कोयले जैसा रंग! बुखार में तप रहा था। क्या कहूँ भाया, दोनों पैर सूज गए थे, 'शूह' बिगड़कर पीप पड़ गई थी। पैर धोते फातिमा का कलेजा हिल गया, ऐसे सुराख हो गए थे...।"

रहमतउल्ला ने फिरन की बाँह से मुँह पोंछा - "तुमसे क्या कहूँ भाया, औलाद का दुख तुमने क्या कम सहा है? बच्चे बेमौत मारे गए भाया, अभी तो उनके खेलने-खाने के दिन थे...।"

नीलकंठ और रहमतउल्ला, दो पिता औलादों को याद करते एक हो गए। एक ही दर्द एक ही पीड़ा, एक ही कसक! कौन किससे शिकायत करता!

"मसूद लौट आया, यह अच्छा हुआ।" नीलकंठ चाय बनाने के लिए स्टोव के पास चला गया। कहवे की जबरदस्त तलब उठी थी।

"हाँ! समझ गया, 'उन्हें' कश्मीर वादी चाहिए, कश्मीरियों से उन्हें कोई मुहब्बत नहीं। भाई की दुर्गत देखकर भी उसका भरम टूट गया। चिल्लयकलाँ में कुपवारा की पहाड़ियों में 'गन' देकर भेज दिया, 'लड़ो और मरो', न ढंग के जूते दिए न कपड़े।"

रहमतउल्ला के भीतर गुब्बार-सा उठा था।

"पहले हिंदुओं को घर-बाहर कर दिया फिर मुसलमानों को भी कहाँ बख्शा? आधी रात घरों में घुसकर खाने-पीने की फरमाइशें तो करते ही थे, घर की बहू-बेटियों को बेहुरमती करने से भी गुरेज नहीं किया। जिसने समझाने की कोशिश की, उसे गोली से भूनकर खामोश कर दिया।"

नीलकंठ हूँ-हूँ करता रहा - "चलो, लड़का लौट आया। अच्छा हुआ। आतंकियों की असलियत खुद देख आया। तुमने तो समझाने की कोशिश की थी।"

"हाँ समझ गया, पर 'बाजस खराबी करिथ' (खराबी होने के बाद)।"

नीलकंठ ने गरम कहवा सामने रखा - "बादाम नहीं हैं, इलायची डाल दी है।"

मैं कल लेकर आऊँगा, घर में मुट्ठी-भर पड़े होंगे।

गरम कहवा सुड़कते दोनों बुजुर्ग दिल खोल बतियाते रहे।

"तुम कैसे रहे उधर, मैं तो अपनी ही दास्ताने गम सुनाता रहा, भाभी को नहीं लाए?"

"तुम्हारी भाभी तो दो साल पहले मुझे छोड़कर चली गई।"

"खुदा जन्नत बख्शे!" रहमतउल्ला को धक्का लगा - "दुख भी बड़ा सहा बेनी ने! औलाद का दुख सबसे बड़ा भाया!"

"हाँ, अधमरी तो पहले ही हो गई थी, साँप काटने का बहाना हो गया।"

नीलकंठ ने कैंपों की हालात बयान की। रहमतउल्ला उत्सुक था।

"सुना, तुम लोगों के लिए पक्के घर बना दिए सरकार ने।"

"हाँ भाया! नथुने जैसे कमरे में पूरा टब्बर रहता था। रघुनाथ, उसकी बीवी, जवान बेटियाँ, रूपावती और मैं। सच पूछो तो रात को। हाजत के लिए उठने से डरता था, कहीं कतार में सोए बाल बच्चों को कुचल न दूँ। अच्छा हुआ तुम्हारी भाभी ने अपनी राह ली! अब पिछले साल दोनों बेटियों की शादी कर दीं, तो मैं भी थोड़ा फारिग महसूस करने लगा। सोचा अब गाँव लौट जाऊँगा। जो किस्मत में होना हो, हो जाए। सच पूछो तो अपने गाँव-घर की हवाओं के लिए भी तरस गया था।"

"सही कह रहे हो भाया! अपना घर गाँव कौन छोड़ना चाहता है! अफसोस, मैं तुम्हारा घर नहीं बचा पाया। क्या कहूँ, किस मजबूरी में जिया हूँ। न मुँह खोले बनता था, न आँख बंद कर पाता था। मुलुक की बरबादी देखन को जीना बदा था, वरना अपना जैसा भाईचारा और किस गाँव घर में था?" रहमतउल्ला जैसे अपराधी बन गया था।

नीलकंठ ने उबारा - "इधर नई सरकार बनी तो लगा, शायद हालात बदल जाएँ! तुम्हें क्या लगता है?"

"डायलाग की बात तो सरकार करने लगी है। जेल में बंद कैदियों को छोड़ा भी जार हा है। देखो, आगे क्या होता है?"

"उधर प्रधानमंत्री जिद पर अड़े हैं, पहले पाकिस्तान लड़ाई बंद करे, घुसपैठिए भेजना बंद कर दे, तभी बातचीत हो पाएगी।"

"बातचीत जरूरी है भाया, यह तो हम अपढ़ और गँवार भी समझते हैं।" रहमतउल्ला ने बाल धूप में सफेद नहीं किए। जानता है, अब भटके हुए लड़के भी 'गन कल्चर' की असलियत समझ गए, घर घुसपैठिए?

"मगर लड़ाई बंद कहाँ हुई?" नीलकंठ कहते-कहते रुक गया। उसकी आँखों के आगे ताजी घटनाएँ घूमने लगी। जम्मू के रघुनाथ मंदिर में गोलाबारी... बी.एस.एफ. के सेक्टर पर आत्मघाती दस्तों का हमला... मस्जिद में तीन मिलिटेंटों का घुसना...!

"उम्मीद पर दुनिया कायम है भाया!" रहमतउल्ला कंबल लपेटता उठ खड़ा हुआ। रात होने से पहले उसे घर पहुँचना है और पहाड़ों पर शाम के स्याह साए उतरने लगे हैं। नीलकंठ रहमतउल्ला को दरवाजे तक छोड़ आया।

"ठीक कह रहे हो भाया, जब तक साँसा, तब तक आसा।"

बाहर छुटपुट गोलियों की आवाजें बराबर आ रही हैं, शायद फिर किसी आत्मघाती दस्ते ने बी.एस.एफ. कैंप पर धावा बोल दिया है।